(198) (क) श्रम मूल्य वृद्धि से परेशान बडे किसानो द्वारा नरेगा के विरूद्ध योजना।
(ख) महिलाओं को समान अधिकार या विशेष अधिकार पर समीक्षा
(ग) शिक्षा विस्तार पर होने वाले खर्च की पूर्ति अशिक्षितो से क्यों
(ध) कृषि उत्पादन मूल्यो पर भरत झुनझुन वाला और पंजाब केशरी के संपादक अश्विनी कुमार के विपरीत विचार और मेरी समीक्षा

नरेगा के विरूद्ध षड्यंत्र उजागर

स्वतंत्रता के बाद के साठ वर्षो तक गरीब ग्रामीण श्रमजीवी के शोषण के उद्देश्य से पूंजीपति शहरी बुद्धिजीवी वर्ग की नीतियॉ बनती रहीं । साम्यवादी भारत में बुद्धिजीवियों का प्रतिनिधित्व करते रहे हैं और भाजपा पूंजीपतियो की । कांग्रेस को सिर्फ सत्ता से मतलब रहा चाहे कोई मरे या जीये उसे क्या मतलब । मनमोहन सिंह सरकार के प्रमुख सहयोगी वामपंथियों ने अनजाने मे नरेगा की मांग कर दी जिसे मनमोहन सोनिया जोडी ने लाभ दायक समझ कर स्वीकार कर लिया । इस योजना के अन्तर्गत किसी भी ग्रामीण परिवार के एक सदस्य को वर्ष में एक सौ दिन सिर्फ सौ रूपया प्रतिदिन का रोजगार देने की गारंटी दी गई । याद रहे कि यह गारंटी परिवार के मात्र एक सदस्य को मात्र वर्ष में एक सौ दिन मात्र सौ रूपया रोज के लिये ही है। बुद्धिजीवियों की सर्वाधिक संख्या और पकड़ साम्यवादियों के साथ रही है और पूंजीपतियों की भाजपा और आंशिक रूप से कांग्रेस के साथ । सबको प्रारंभ से ही लगा कि नरेगा को लागू करके भारी भूल हो रही है क्योकि इससे तो श्रम की मांग और मूल्य दोनों ही बढ़ जायेगा तथा मजदूर मजबूर नहीं रहेगा जैसा कि अब तक रहता आया है। उन्होने पीछे से इस योजना मे कई प्रकार से किन्तु परन्तु की कोशिशें की किन्तु सोनिया गांधी अपनी जिद पर अड़ी रही और योजना शुरू हो गई । योजना विरोधियों को आशा थी कि योजना बजट के अभाव में या तो दम तोड देगी या दम तुडवा दिया जायगा किन्तु योजना जब एक दो वर्ष पार कर गई तथा उसे कुछ जिलों से बढाकर पूरे देश में लागू कर दिया गया तब बुद्धिजीवियो पूंजीपतियों के धैर्य का बांध टूटने लगा । ज्ञान तत्व अकेली ऐसी पाक्षिक पत्रिका रही जिसने अपने पंद्रह से तीस नवंबर दो हजार सात के सम्पादकीय में इस षड्यंत्र की योजना उजागर कर दी थी । उक्त लेख को सिर्फ दिल्ली के प्रथम प्रवक्ता पाक्षिक ने छापने की हिम्मत की थी । अन्य किसी ने छापा तक नहीं।

अब वह षड्यंत्र उजागर हो गया है । छत्तीसगढ़ के दैनिक हरि भूमि के बाइस मार्च में छपे समाचार के अनुसार एक संसदीय समीति ने नरेगा योजना के विरूद्ध सरकार को अपनी रिपोर्ट पेश कर दी है । रिपोर्ट इस प्रकार है:–

''एक संसदीय समिति ने फसल के मौसम में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी योजना के तहत काम नहीं देने की सिफारिश की है क्योकि इससे देश का कृषि कार्य प्रभावित हो रहा है।

समिति ने अपनी एक रिपोर्ट में कहा कि अनेक राज्यो में नरेगा के अंतर्गत काम करने की वजह से फसल के मौसम में कृषि कार्यो के लिए मजदूर उपलब्ध नही होते है जिसके चलते कृषि कार्य प्रभावित होते है। उसने कहा है, यह सुनिश्चित करने के लिये कि नरेगा के तहत मजदूर केवल गैर कृषि मौसम मे ही काम करें, दिशा –निर्देशो मे संशोधन करना पड़े तो

उसे किया जाए । समिति सरकार के इस तर्क से सहमत नहीं है कि नरेगा मे 100 दिन काम करने के बाद मजदूर कही भी काम करने को स्वतंत्र है । संसदीय समिति का कहना है कि इस बात का बाकायदा सर्वेक्षण किया जाए कि नरेगा से फसल के मौसम में कृषि कार्य किस हद तक प्रभावित हो रहा है ।

इसमे कहा गया है कि इस सर्वेक्षण के नतीजे के अनुरूप दिशा निर्देशो मे आवश्यक परिवर्तन किये जाए। जिसमे यह सुनिश्चित हो सके कि फसल के मौसम मे नरेगा के तहत रोजगार नहीं दिया जायगा । समिति का मानना है कि देश की उत्पादकता को प्रभावित होने से बचाने के लिये ऐसा करना जरूरी है। सरकार को चाहिये कि जब कृषि मौसम नहीं हो उस अवधि में ही नरेगा के तहत रोजगार दिया जाय। रिपोर्ट मे इस बात पर भी चिन्ता जताई गई है कि नरेगा के तहत सृजित परिसंपत्तियों की गुणवत्ता कुल मिलाकर घटिया, गैर टिकाउ और गैर उत्पादक है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस योजना के तहत सृजित की जा रही परिसंपत्तियों की गुणवत्ता को नजर अंदाज किया जा रहा है।

समिति ने सरकार से मांग की है कि वह उसे सूचित करे कि नरेगा के तहत सृजित होने वाली परिसंपत्तियों की गुणवत्ता और टिकाउपन के लिये क्या कदम उठाये गये है।

नरेगा में भ्रष्टाचार के बारे में संज्ञान लेते हुये रिपोर्ट में कहां गया है कि योजना के तहत श्रमिकों को मजदूरी के भुगतान में अनेक विसंगतियां देख कर समिति व्यथित है। इसमें कहा गया है कि 21 राज्यो की अनेक ग्राम पंचायतो ने जारी किये गये जॉब कार्डो की संख्या, रोजगार की मांग करने वाले और पाने वाले की सूची, प्राप्त और खर्च की गई धनराशि, किये गये भुगतान, स्वीकृत कार्य कार्यो की लागत और उन पर व्यय का वितरण, कार्य की अवधि, सृजित मानव दिवस, स्थानीय समुदायों की रिपोर्ट और मास्टर रोलो की प्रतियों आदि के संबंध में ताजा आंकड़े सार्वजनिक नहीं किये गये है''।

मैने स्वयं भी अनुभव किया कि नरेगा के प्रभाव से छत्तीसगढ के गावों मे श्रम मूल्य भी बढ़ा है और पलायन भी रूका है । पहले यहॉ के मजदूर रोजगार के अभाव मे हरियाणा पंजाब जाकर कुछ माह तक वहॉ खेती कर दिया करते थे। अब उन मजदूरों को यही काम मिलने से वे उतनी मजदूरी में जाने को तैयार नही है। मैं स्वयं हरियाणा पंजाब गया तो पता चला कि बाहर के मजदूरों के न आने के कारण खेती का कार्य प्रभावित होगा क्योकि आर्थिक सम्पन्नता के कारण इधर का आदमी तो अब वह काम कर नही सकता और बाहर के मजदूर को नरेगा ने मजदूरी से दूर कर दिया है। उन बड़े किसानों की मेरे समक्ष एक ही मांग रही कि कृत्रिम उर्जा को सस्ता किया जाय और नरेगा को बन्द कराया जाय । एक बार भी किसी ने कृषि उत्पादन टैक्स मुक्ति की बात नही की न ही कृषि उत्पादन मूल्य वृद्धि की बात रखी । मुझे कुछ सांसदों तक ने नरेगा के विरूद्ध अपने तर्क बताये। मै समझ गया कि अब नरेगा पर ग्रहण लगने ही वाला है क्योकि अब सम्पन्न किसान बरदाश्त करने की स्थिति में नही है और वामपंथी भाजपाई वैसे ही इसे घातक कार्य मानते है। ज्योंही वामपंथी भाजपाई सांसदों को सम्पन्न कांग्रेसियों का समर्थन मिलेगा त्योंही ये श्रम सहयोगी का अपना नकाब भी उतारने में देर नहीं करेंगे ।

संसदीय समिति ने रिपोर्ट देने मे तर्क कम और नरेगा का विरोध अधिक किया है। इनकी रिपोर्ट के मुख्य निष्कर्ष देखियें –

(1) खेती के महिनो मे नरेगा के अन्तर्गत रोजगार को रोक दिया जाय क्योकि कृषि उत्पादन घटता है।
(2) नरेगा के अन्तर्गत सम्पन्न कार्यो की गुणवत्ता कमजोर है।
(3) नरेगा में भारी भ्रष्टाचार है।
(4) नरेगा के अन्तर्गत मजदूरों के साथ अन्याय हुआ है। समिति इससे व्यथित है।

समिति की रिपोर्ट ही प्रमाणित करती है कि भारत में अब भी बड़ी संख्या में ऐसे लोग है जिन्हें खेती के महिनों में भी सौ रूपया प्रतिदिन का रोजगार उपलब्ध नहीं है। तभी तो वे खेती का काम छोड़कर नरेगा में काम करते होंगे । समिति की रिपोर्ट यह भी प्रमाणित करती है कि नरेगा के अन्तर्गत होने वाला कार्य तो हुआ किन्तु स्तर कमजोर था और भ्रष्टाचार हुआ । कुल मिलाकर समिति इन सबसे व्यथित है और सिफारिश करती है शासन अपनी नीति में संशोधन करे ।

समिति के ध्यान में यह बात आनी चाहिये थी कि प्रदेश सरकारों द्वारा घोषित न्यूनतम श्रम मूल्य कितने प्रतिशत श्रमिकों को उपलब्ध है ?जो नरेगा के अन्तर्गत घोषित श्रम मूल्य की अपेक्षा बहुत कम है । यदि नरेगा द्वारा घोषित सौ रूपया कृषि उत्पादन पर प्रभाव डाल रहा है तो प्रदेश सरकारो के मुखिया मायावती रमणसिंह नीतिश कुमार ने न्यूनतम श्रम मूल्य सवा सौ से डेढ सौ रूपया घोषित कर रखा है उसका क्या औचित्य है ? वह श्रम मूल्य प्रदेश के कितने लोंगों को मिल रहा है ? यदि वह मिलने लगे तब क्या परिणाम होगा ? उसमे कितना भ्रष्टाचार है और उसकी क्या गुणवत्ता है ? समिति के सदस्य इस बात से तो व्यथित हुए कि श्रम की मांग बढ़ने से उत्पादन घटा किन्तु इस बात से व्यथित नही हुए कि न्यूनतम घोषित श्रम मूल्य पर एक भी श्रमिक को रोजगार उपलब्ध नही है । यदि है तो भ्रष्टाचार के आधार पर और वह भी नरेगा से कई गुना ज्यादा भ्रष्टाचार से ।

मुझे तो आश्चर्य होता है यह देखकर कि हमारे देश की संसद में ऐसे लोग भी हैं जो इतना खुलकर श्रम की मांग वृद्धि के विरूद्ध बोल सकते है और लिख भी सकते हैं। जिन लोगो ने यह समिति बनाई वह किसी षड़यंत्र के अन्तर्गत बनाकर ऐसे सदस्यों का चयन किया जो बड़े किसानो की वकालत करने के लिये विख्यात हों । श्रम की मांग बढ़े, श्रम का मूल्य बढ़े, बेरोजगार क्षेत्रो का पलायन रूके, इससे जो सांसद व्यथित हों उन सब का नाम भी उजागर करना चाहिये कि ऐसे ऐसे सांसद इस समिति में थे जो श्रम की मांग बढ़ने से व्यथित है और इन्हे श्रम मूल्य वृद्धि से उत्पादन पर बुरा असर पडने की चिन्ता सता रही है । मै बडे किसानो के कष्ट की बात तो समझ सका कि उन्हे मजबूरी में या तो मजदूरी बढ़ानी पडेगी या फसल से हाथ धोना पडेगा । लेकिन हमारें सांसद प्रतिनिधि उपज का मूल्य बढाने की सलाह न देकर नरेगा में संशोधन की बात करे तो व्यथित तो हमें होना चाहिये । हमारे सांसदो की व्यथा तो नकली ,स्वार्थपूर्ण कपट पूर्ण है , वास्तविक व्यथा तो उन्हे है जिनका वे प्रतिनिधित्व कर रहें है। वे सांसद महोदय किसी क्षेत्र विशेष का प्रतिनिधित्व न करके पूरी संसद का अर्थात पूरे भारत का

प्रतिनिधित्व कर रहे थे । उन्हे जितनी चिन्ता उत्पादकों की हुई इतनी श्रमिकों की क्यों नही हुई। मैने सुना है कि बंगाल की साम्यवादी सरकार दुनियां भर मे डंका पीटती थी कि उसके बंगाल का श्रमजीवी बहुत सुखी है दूसरी ओर उसकी नाक के नीचे कलकत्ता में हाथ रिक्सा चलने से उसे व्यथा भी होती थी। उसने रिक्सा वालों के श्रम की मांग बढाने की योजना न बनाकर उन्हे हटाने का फर्माना जारी कर दिया । हमारे देश की प्रदेश सरकारें दुनियां भर में श्रम मूल्य का ढ़िंढ़ोरा पीटते हुए प्रतिवर्ष नकली श्रम मूल्य घोषित करती है। नरेगा उनकी पोल खोलता है कि उनके घोषित श्रम मूल्य मे सच्चाई क्या है ? उसका उपाय यही है कि खाने के दांत और दिखाने के दांत इस तरह अलग–अलग हो जावें कि खाने वाले किसी अन्य को दिखे ही नहीं।

मेरी हार्दिक इच्छा है कि संसदीय समिति के सदस्यों का नाम सार्वजनिक किया जाना चाहिये जिससे कि देश का श्रमजीवी वर्ग उन सदस्यो का उचित सम्मान कर सके । मैने पूर्व में ही जिस षड़यंत्र का अनुमान लगाया था वह षड़यंत्र स्पष्ट रूप से सामने आ गया है । यह षड़यंत्र धीरे धीरे और मजबूत ही होगा । श्रम का महत्व समझने वालों को सावधान हो जाना चाहिये।

कार्यालयीन प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न :–क्या आप महिला आरक्षण के विरूद्ध हैं ?

उत्तरः– मै महिला आरक्षण का न समथर्क हूॅ न विरोधी । मै विरोधी हूॅ केन्द्रीयकरण का। मैं विरोधी हूॅ सामाजिक विघटन का । तीन प्रकार का केन्दीयकरण हानिकारक होता है। (1) सत्ता का समाज के पास से निकलकर राज्य के पास इकट्ठा होना (2)ज्ञान का श्रम जीवियों के पास से निकलकर बुद्धिजीवियों के पास बढ़ना (3) धन का गरीबो के पास से निकलकर पूॅजीपतियों के पास बढ़ना । महिला आरक्षण की इस तीनो के समाधान में कोई भूमिका नहीं है। इसके विपरीत महिला आरक्षण व्यवस्था संसद या सरकारी नौकरी केलाभ कुछ परिवारों तक समेटने में सहायक होगा । यह अप्रत्यक्ष रूप से केन्द्रीयकरण है।

दूसरी बात यह है कि यह प्रावधान सम्पूर्ण समाज की परिवार व्यवस्था को कमजोर करेगा । स्त्री और पुरूष की पति पत्नी वाली पारिवारिक भूमिका का आपसी सामंजस्य टूटेगा । पुरूष व्यवस्था का एकाधिकार और परिवारिक एकता की टूटन मे से किसी एक को चुनना उतना आसान नही जितनी आसानी से नेताओं ने कर लिया। हमें ऐसे मार्ग तलाशने चाहिये कि सांप भी मरे और लाठी भी न टूटे। अर्थात् महिलाओं को समानता तो मिले किन्तु परिवार व्यवस्था न टूटे। और कल्पना करिये कि ऐसा कोई फार्मूला न निकले तो परिवार व्यवस्था को नुकसान पहुॅचाने की अपेक्षा पुरूष प्रधानता को तब तक चलने दें जब तक कोई ठीक मार्ग न निकले । वर्तमान समय में ऐसा मार्ग तो उपलब्ध है जिसके अनुसार परिवार के प्रत्येक सदस्य को पारिवारिक ,सामाजिक व्यवस्था में समान अधिकार दे दिया जाय । परिवार की सम्पूर्ण सम्पत्ति में सबका हिस्सा तथा अधिकार बराबर हो ऐसा निर्णय नेता लोग करेंगे नही क्योकि उनका उद्देश्य महिला सशक्तिकरण न होकर समाज में वर्ग विद्वेष को बढाना है ।

इसलिये मैं किसी भी प्रकार के आरक्षण के विरूद्ध हूॅ और इस विरोध के अंतर्गत ही महिला आरक्षण भी शामिल है।

मुझे लगता है कि आरक्षण का समर्थन करने वालों को समाज शास्त्र का ज्ञान नहीं है। आदर्श व्यवस्था यह है कि परिवार में या समाज मे सबकों समान अधिकार देने के बाद भी जिन्हे विशेष सहायता की आवश्यकता हो वह सहायता अन्य सदस्यों का कर्तब्य तो होना चाहिये किन्तु कमजोर का अधिकार नहीं। इसे हम और स्पष्ट समझें कि परिवार का एक सदस्य विशेष बीमार है । उस सदस्य की विशेष देखभाल परिवार के अन्य सदस्य करें यह अन्य सदस्यों का कर्तव्य तो है किन्तु दायित्व नहीं। ना समझ लोग कर्तव्य और दायित्व का अंतर नहीं समझते । दायित्व दूसरे पक्ष का अधिकार बन जाता है जबकि कर्तव्य दूसरे पक्ष का अधिकार न बनकर अनुकंपा होती है । मैने जब अपनी बैठको के एजेन्डे मे लिखा था कि मेरी बैठकों मे समाानता का व्यवहार किया जायगा । फिर भी समानता का व्यवहार मेरा कर्तब्य होगा, आपका अधिकार नही । मेरे ऐसा लिखने पर प्रश्न भी उठे किन्तु मै ठीक था । आज भी मैं कह रहा हूॅ कि समानता का व्यवहार हमारा दायित्व है और विशेष व्यवहार कर्तव्य । महिलाओ को परिवार मे समान अधिकार देना हमारा दायित्व है और विशेष अधिकार हमारा दायित्व न होकर कर्तव्य हैं। दुर्भाग्य से कर्तव्य को दायित्व मे बदलने की ना समझी की जा रही है ।

यदि परिवार के किसी सदस्य को विशेष इलाज चाहिये तो उसके लिये उस सदस्य को साथ बिठाकर चर्चा करना उचित नहीं। यदि आवश्यक हो तो पूछना समझना अलग बात है। उसे चर्चा मे शामिल होने का अधिकार देना तो घातक होगा । यदि ऐसा महसूस होता है कि महिलाएॅ समाज में पिछड़ रही है और उन्हे आगे लाने के लिये विशेष प्रावधान होना चाहिये तो ऐसी चर्चा मे सिर्फ पुरूषो को ही बैठना चाहिये महिलाओं को नहीं क्योकि चर्चा दायित्व की न होकर कर्तव्य की हो रही है। यहॉ उल्टा हो रहा है । महिलाओ को समान अधिकार देने का तो प्रयत्न ही नही हो रहा है उल्टे विशेष अधिकार की बात हो रही है वह बात भी महिलाओ को साथ बिठाकर । वह भी इस रूप मे कि कुल आबादी की अडतालीस प्रतिशत महिलाओं मे से पांच लाख में से एक को साथ बिठाकर । मै इस पूरी योजना के विरूद्ध हूॅ । मेरा मत है कि संसद महिलाओ को संसद में बिठाने की अपेक्षा संसद के ही कुछ अधिकार कम करके परिवारों को सौप दे तो महिलाएॅ संसद में आरक्षण क्यो मांगेगी। हमारी रामानुजगंज की धर्मशाला व्यवस्था में तो महिलाओ को आरक्षण नही चाहिये । सच बात यह है कि लूट के माल मे बटवारे का झगडा है । संसद सदस्य बनना लूट का माल है । यदि अपने ही परिवार के कई लोग ले आवे तो अच्छा है । मैने सुझाव दिया है कि दस वर्ष के लिये संसद की सभी सीटे महिलाओं को दे दी जावें या यह प्रतिबंध लगे कि परिवार का एक ही व्यक्ति संसद में जायेगा । इस सुझाव पर तो सोनिया सुषमा चुप है क्योकि ऐसा होते ही बेचारे राहुल गांधी का क्या होगा । संसद में मां बेटा होने वाली बहु सबको जाना ही चाहिये । मै इसे घातक मानता हूॅ । यही कारण है कि मै महिला आरक्षण के प्रस्ताव पर न तो सोनिया, मनमोहन, सुषमा, वृंदा करात के साथ हूॅ न ही मुलायम, लालू, साहित्यकार राजकिशोर या मस्तराम कपूर के साथ । मै दोनों दिशाओं को घातक मानता हूॅ ।

मेरा आग्रह है कि महिलाओं को समान अधिकार तत्काल दे दिया जावे और अन्य अधिकारों के लिये पुरूष वर्ग के बीच चर्चा जारी रखी जाय तभी सांप भी मरेगा लाठी भी बचेगी अन्यथा सांप तो मरेगा नही और लाठी अवश्य टूट जायेगी ।

प्रश्नोंत्तर

4:—श्री बालकृष्ण पिल्लै, निरूअनन्तपुरम,केरल,

नक्सलवाद की आपदा से बचने के लिये ग्राम सभा को सशक्तिकृत बनाने का आपका सुझाव अच्छा लगा । ग्राम सभाओं को कौन कौन से अधिकार दिये जाने है इस पर चिन्तन आवश्यक लगता है । अधिक अधिकार देने का काम नये कानूनों के निर्माण से संभव है ? शिक्षा गरीबी को लेकर श्री पंकज अग्रवाल जी ने तर्क पेश किये है वे कुछ हल्के लगे। अनुभव यही बताता है कि शिक्षा से ही गरीबी मिटाई जा सकती है । श्रम के लिये भी समाज के लिये आवश्यक श्रम दक्षता पूर्वक करने के लिये भी शिक्षा की जरूरत है न ? विकशीत देशों के उदाहरण हमारे सामने है। प्रायः विकसित देश है जो कम से कम अस्सी प्रतिशत साक्षरता का लक्ष्य हासिल कर चुका है। इस संबंध में आपके क्या विचार है?

उत्तरः—ग्राम सभा को अधिकार देने के लिये बहुत से नये कानून बनाने की जरूरत न होकर वर्तमान कानूनों को कम करने की जरूरत है । सरकार जितना काम सफलता पूर्वक कर सकती है उतना अपने पास रखकर बाकी सब स्वयं इस तरह छोड दे कि अन्य सभी कार्य परिवार, गांव, जिला, प्रदेश और केन्द्र की सूची में बंट जावे । केन्द्र सरकार अलग हो और केन्द्र सभा अलग। जो काम परिवार से प्रदेश तक न हो पावे वह केन्द्र सभा को दें दे किन्तु केन्द्र सरकार को नहीं । इस तरह सरकार बहुत मजबूत हो सकती है और समाज भी मजबूत हो सकता है।

शिक्षा का अपना महत्व है किन्तु शिक्षा विस्तार के लिये अशिक्षितो पर टैक्स लगाना अमानवीय भी है और अत्याचार भी । यदि पचीस लोग भूखे है और आप बाइस को छोड़कर तीन को भरपेट खाना दे दें यह असमान तो है किन्तु अन्याय नहीं क्योकि खाना देना आपका कर्तव्य तो है किन्तु बाइस का अधिकार नहीं । यह आपकी मर्जी है कि आप किसे दे और किसे न दें।

किन्तु आप तीन लोगों को भरपेट खाना देनें के लिये इन बाइस के स्वयं के प्रयत्नों से प्राप्त भोजन में से भी आंशिक छीन ले तब यह काम अत्याचार और अमानवीय होगा। सरकार शिक्षा पर करोड़ खर्च करे या अरब यह प्रश्न नहीं है प्रश्न यह है कि शिक्षा पर बजट बढे और श्रमजीवियों के श्रम पर टैक्स लगे । मेरी आपत्ति शिक्षा पर नहीं है । मेरी आपत्ति शिक्षा पर बजट बढ़ाने और रोटी कपड़ा, मकान दवा जैसी चीजों से वसूलने पर हैं। मै गरीब ग्रामीण श्रमजीवी कृषि उत्पादक से किसी भी प्रकार का कर लेने के खिलाफ हूँ चाहे आपकी शिक्षा बढे या बन्द हो जाये । आज भारत में ऐसी स्थिति नही कि रोटी कपड़ा जैसी वस्तुओं पर कर लगेगा तभी शिक्षा बढ़ेगी । आप और कोई व्यवस्था हो तो करिये अन्यथा जितना हो उतना ही करिये किन्तु गरीब ग्रामीण श्रमजीवी के साथ अन्याय करने के पाप का सर्मथन मत करिये ।

मै पूछता हूँ कि साइकिल पर कर और रसोई गैस की छूट । पचीस तीस वर्षो से कोई नेता इस प्रश्न का उत्तर नहीं देता । सब रसोई गैस की आवश्यकता की चर्चा करते है पर साइकिल की नहीं । मै कहता हूँ कि शिक्षा के लिये रोटी पर टैक्स तो सबलोग शिक्षा पर तो चर्चा करते है पर रोटी पर नहीं। मुझे संदेह होता है कि बुद्धिजीवियों को श्रमजीवियों के लिये जरा भी दया की भावना है ही नहीं । वे तो श्रम को गुलाम बनाकर रखना चाहते है। मै इसके विरूद्ध हूँ। मै चाहता हूँ कि आप श्रम और शिक्षा की तुलना करके लिखिये तो अच्छा होगा। यदि श्रमजीवी भी पढ़ेगा या अपने बेटे को पढ़ायेगा तो टैक्स देगा किन्तु बेचारा हल जोतेगा और उसमें टैक्स देगा तब आपका बच्चा पढ़ेगा यह अन्याय है और इसका विरोध होना ही चाहिये ।

भारतीय कृषि उत्पादन वृद्धि

भारतीय अर्थ व्यवस्था पर गंभीर चिन्तन प्रस्तुत करने वाले अर्थशास्त्री भरत झुनझुनवाला को मै बहुत निकट से जानता हूँ । आर्थिक विषयों पर मेरे उनके बीच कई विषयों पर गंभीर मतभेद रहे है जो अब तक है। हम जब भी इकट्ठे होते हैं तो चर्चाएँ होती है। फिर भी भारतीय अर्थ व्यवस्था में उनकी जितनी स्पष्ट सोच है वैसी मुझे अन्य अर्थशास्त्रियों में नही दिखती। मै इस निष्कर्ष तक पहुँचा हूँ कि अन्य अधिकांश अर्थशास्त्री विदेशी अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तों को आधार बनाकर निर्ष्कष निकाल लेते है जबकि भरत झुनझुनवाला जी अपने अनुभवों का भी उपयोग करते है। यही कारण है कि इनके चिन्तन में मौलिकता भी पाई जाती जो अन्यत्र नहीं दिखती । यहॉ तक कि प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रधान मंत्री मनमोहन सिंह जी के अर्थशास्त्रीय चिन्तन मे भी ऐसी मौलिकता का अभाव ही है। श्री भरत झुनझुनवाला जी का एक लेख दैनिक देशबन्धु छत्तीसगढ़ के 25/03/10 के अंक में छपा जिसके मुख्य अंश ये है :–

''दूसरी सफलता खाद्यानों के बढ़ते उत्पादन की है। खाद्यान उत्पादन 1950 में 5.1 करोड़ टन से बढ़कर 2005 में 19.5 करोड़ टन हो गया है। 1965 में अमरका में पाल अर्लिक ने एक पुस्तक प्रकाशित की थी । उस समय अमेरिका भारत को भूखमरी से बचने के लिये गेहूँ उपलब्ध करा रहा था । आर्लिक ने सुझाव दिया था कि अमेरिका को यह सहायता बंद कर देनी चाहिये चूकि भारत की जनसंख्या इतनी तेजी से बढ़ रही है कि उसको बचा पाना असंभव है। भारत जैसे असंभव देशों को उनके हाल पर छोड़ देना चाहिये और अमेरिका को अपना ध्यान तुलना में स्वस्थ देशों पर केन्द्रित करना चाहिये । इस दुरूह स्थिति से हम बचकर निकल आये है। खाद्यान उत्पादन में लगातार वृद्धि हुई है । जनसंख्या के दोगुना से अधिक बढ़ने के बावजूद प्रति व्यक्ति खाद्यान का घरेलू उत्पादन 437 ग्राम प्रति दिन बढ़कर 480 ग्राम प्रतिदिन हो गया है। आज हम मूल रूप से तेल और दाल के अतिरिक्त आत्मनिर्भर है। इस महान् उपलब्धि का विशेष श्रेय न्यूनतम मूल्य समर्थन कार्यक्रम को दिया जाना चाहिये जिसके कारण किसान के लाभ सुरक्षित रहे और वह अधिकाधिक उत्पादन करने को उत्सुक रहा ।

प्रश्न उठता है कि कृषि की विकास दर घटने के बावजूद प्रति व्यक्ति खाद्यान उपलब्धता में वृद्धि कैसे हुई है ? इस रहस्य की कुंजी मूल्यों में है। मान लीजिये इस वर्ष कृषि उत्पादन की मात्रा में 6 फीसदी की वृद्धि हुई है । साथ साथ मूल्यों में 4 फीसदी की गिरावट आई है। इस प्रकार उत्पादन की कीमतों में केवल दो फीसदी की वृद्धि होती है। उत्पादन में

भारी वृद्धि के सुप्रभाव को दाम में गिरावट ने आंशिक रूप से काट दिया है जिसके कारण कृषि विकास दर न्यून है।

भारतीय कृषि का विविधिकरण भी हो रहा है । पूर्व में हमारी मुख्य फसलें गेहूँ, चावल, बजरा, रागी एवं गन्ना थी । अब सोयाबीन, मुंगफली, सूरजमुखी, सरसों, मुंग, फल एवं सब्जी का भारी उत्पादन होने लगा है । किसी समय आम सेव एवं अंगुर जैसे फल जिला मुख्यालय मात्र से मिलते थे। आज हर कस्वे में उपलब्ध है। फल, सब्जी एवं मसाले का हम भारी मात्रा में निर्यात भी कर रहे है।

लेकिन इन उपलब्धियों से सरकार आश्वस्त नहीं है जो ठीक ही है। कारण यह कि इन उपलब्धियों के बावजूद किसान आत्महत्या कर रहे है और दाल तथा खाद्यान तेलों के लिये आयातों पर हमारी निर्भरता बढ़ती जा रहीं है। इन समस्याओं का मुख्य कारण गिरते दाम है। सरकार हर क्षेत्र में वैश्वीकरण को अपनाना चाहती है। भारत यदि सॉफ्टवेयर सस्ता बना सकता है और हमारे यहां खाद्य तेल का उत्पादन मंहगा पडता है तो हमें तेल का आयात कर लेना चाहिये । इससे मलेशिया को सस्ता सॉफ्टवेयर और इंडिया को सस्ता तेल मिल जायेगा। दोनो देश की प्रगति होगी । इस सोच के अनुसार सरकार कृषि उत्पादों के घरेलू दामों में गिरावट को श्शुभ मानती है। इससे हमारे नागरिक को सस्ता अन्न भी मिलेगा । परंतु सरकार दो भूल कर रही है। पहली भूल यह कि देश की खाद्य सुरक्षा की आर्थिक विकास की वेदी पर बलि चढ़ाई जा रही है। किसी अंर्तराष्ट्रीय संकट के समय हमें मलेशिया से तेल और अमरीका से गेहूँ मिलना बन्द हो सकता है। ऐसी संभावना से बचने के लिये अपने कृषि उत्पादनों को भारी सब्सीडी देकर जिन्दा रखना चाहिये परंतु हमारी सरकार को इस बात की चिंता नहीं है कि संकट में देश के नागरिक क्या खाएंगे? गृहिणी अपने जेवर को कठिन समय के बीमा के रूप में सुरक्षित रखती है। परंतु सरकार घर के जेवर को बेचकर श्शराब और चाकलेट जैसे हानिकारक पदार्थो के आयात को बढ़ा रही है।

दूसरी समस्या यह है कि किसान के पास दूसरी फसल के विकल्प उपलब्ध नहीं है। मैं उत्तराखंड में रहता हूँ । हमारे गांव के किसान घरेलू बाजार के लिये पालक एंव भिंडी का छुटपुट उत्पादन मात्र करते है। जीरा, सौफ, प्याज, अदरख का उत्पादन यहां सफल नही है। ऐसे में गेहूँ और चावल के दाम में गिरावट से किसान पर संकट आ पड़ता है। अनेक राज्यों में किसानों की बढ़ती आत्महत्या का कारण यही है।

सरकार का उत्तर है कि किसान को ऋण, सिचाई और खाद दो जिससे वह उत्पादन बढ़ा कर गिरते मूल्यों के सामना कर सके । परंतु इससे कोई लाभ नहीं है क्योकि सरकार चाहती है कि मूल्यों में गिरावट और तेजी से हो । यही आज तक का रिकार्ड रहा है। प्रमाण है कि सरकार कृषि के वर्तमान में बढ़े हुये मूल्यों को स्थायी बनाने की बात नही करती है वह केवल उत्पादन बढ़ाने की बात करती है।

सरकार को चाहिये कि खाद्य सुरक्षा की बलि न चढ़ाये । खाद्य पदार्थो को सस्ते आयातो से संरक्षण दे । यदि घरेलू उत्पादन अधिक हो तो दूसरे गरीब देशों को मुफ्त उपलब्ध करा दे । परंतु वैश्वीकरण के भूत ने सरकार को इतनी जोर से पकड़ रखा है कि ऐसी

सुरक्षात्मक दृष्टि अपनाना कठिन ही दिखता है। अतः आशा है कि आगामी समय में किसानों का संकट बढ़ता ही जायेगा'' ।

इसी विषय पर एक दूसरा सम्पादकीय पंजाब केशरी के सम्पादक अश्विनी कुमार जी का बीस सितम्बर दो हजार सात को पढ़ा था जिसमें उन्होंने निष्कर्ष निकाले थे कि :–

''चीन युद्ध के बाद भारत मे मंहगाई चालीस गुना बढ़ी है जिसके कारण आम आदमी का जीना दूभर हो गया है । गरीब बेचारे की कमर ही टूट गई है। जो गेहूँ का आटा उस समय पंद्रह रूपया प्रति मन था वह अब बढ़कर कितना हो गया यह सब जानते है। पिछले आठ वर्षो में ही सरकार ने गेहूँ का खरीद मूल्य पचीस प्रतिशत बढ़ा दिया जो अब बढ़कर 850 रू प्रति किन्टल हो गया है। सरकार को चाहिये था कि वह खरीद मूल्य न बढ़ाकर डीजल, बिजली, खाद पर सब्सीडी बढ़ाती'' ।

दोनो विचार एक दूसरे के विपरीत हैं । मैने दोनो की समीक्षा की तो पाया कि अश्विनी जी के विचार ऐसे लगते है जिनमे सड़क छाप अर्थशास्त्र हो या कही से उधार लिया गया हो । मैने एक पत्र लिख कर उनसे पूछा था कि मूद्रा स्फीति और महगांई मे क्या अंतर है तथा मुद्रा स्फीति का आम जन जीवन पर क्या प्रभाव पडता है ? चीन युद्ध के बाद भारत के आम नागरिको के जीवन पर कितना गुना विपरीत प्रभाव पड़ा है । उन्होने कोई उत्तर नही दिया और आज भी उसी तरह मंहगाई के नाम पर समाज मे झूठ फैलाते रहते हैं।

हम विचार करे तो झुनझुन वाला जी के लेखन मे तथ्य है और मौलिकता हैं । कोई वस्तु महगीं हुई है या सस्ती इसका एक फार्मुला बना हुआ है'' उस वस्तु का उस वर्ष का मूल्य ग उस वर्ष से लेकर आज तक की कुल मुद्रा स्फीति – आज का मूल्य त्र वस्तु महगी या सस्ती। इस हिसाब से अभी गेहु का मूल्य करीब अठारह सौ रूपया होना चाहिये था जो अभी एक हजार के पास ही है और अश्विनी जी की नजर मे गरीबो की कमर तोड रहा है ।

अश्विनी जी को किसान आत्महत्या नही दिख रही है । भारत मे जबसे सरकारो ने अनाज निर्यात श्शुरू किया है तभी से इसकी किसानों के प्रति नीयत खराब हो गई है। सरकार समझती है कि किसान सरकार का खजाना भरने वाली मशीन है । उससे ज्यादा से ज्यादा काम लो और अपना खजाना भरते रहो । केन्द्र सरकार किसान का अनाज सस्ते मे खरीद कर उॅचे रेट पर विदेश भेजते रहती है । सरकार बाजार मे किसाानो को स्वतंत्रता से अपना उत्पादन बेचने पर भी कई प्रकार के प्रतिबंध लगा देती है । सरकारे सब प्रकार के कृषि उत्पादनो पर भारी टैक्स भी वसूलते रहती है । इस तरह अनेक प्रकार से किसानो को लूट लूट कर उसमे से थोडी सी छूट बिजली, पानी , खाद पर देती है। इस सरकार से मै जानना चाहता हूँ कि सम्पूर्ण भारत मे करीब पचीस प्रतिशत गेहूँ ऐसे लोग पैदा करते है जो बिल्कुल गरीब है । ये लोग न बिजली, खाद , डीजल का लाभ ले पाते है न अन्य कोई सब्सीडी । हाथ से या बैल से पानी पटाते है। यदि सरकार दो रूपये किलो गेहूँ खरीदे और बिजली पानी,बीज सब मुफ्त दे दे तो ये गरीब किसान कहॉ जायेगे। क्या यह अच्छा नही होगा कि बिजली , डीजल, पानी कि छूट हटा कर सब गेहूँ मूल्य बढाने मे जोड दे । मुझे कभी समझ मे नही आया कि साठ वर्षो मे उपभोक्ताओ पर बुरा प्रभाव दिख रहा है या उत्पादको पर। मेरे विचार मे और

भरत जी के विचारो मे भी उपभोक्ताओं की अपेक्षा उत्पादक अधिक परेशान है जबकि अश्विनी जी सहित अन्य लोग उपभोक्ताओ की परेशानी की अधिक वकालत कर रहें है ं सरकारी आकड़े भी स्पष्ट कर रहे है कि कृषि विकास दर अन्य सबकी अपेक्षा बहुत कम है जबकि उपभोक्ता विकास दर उससे कई गुना ज्यादा । वर्तमान में कुल विकास दर जिसे उपभोक्ता विकास दर कहते है उसका औसत आठ से नौ प्रतिशत के बीच है जबकि कृषि विकास दर का औसत दो से तीन प्रतिशत के बीच । मनमोहन जी, प्रणव मुखर्जी से लेकर अश्विनी कुमार जी तक इस उपभोक्ता विकास दर को और बढाने के लिये तो बहुत चिन्तित दिखते है किन्तु कृषि विकास दर बढ़ाने की कोई चिन्ता नहीं।

मै आपको पुनः स्पष्ट कर दूॅ कि सरकार न उत्पादकों के लिये ज्यादा चिन्तित है न उपभोक्ताओ के लिये ं । वह चिन्तित है देश मे अधिक उत्पादन सस्ता खरीद मंहगा निर्यात और अपना खजाना भरना और उस भरे खजाने को यहॉ वहॉ लुटाना । यह पूरा लूटने लुटाने का खेल मात्र है जिसमें किसान पिस रहा है । मेरा झुनझुनवाला जी से निवेदन है कि वे इस पक्ष को और जोरदार ढंग से उठाने की पहल करें।